ISSN No. 2349-4654
नाद – नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूजिक
वर्ष : 1, अंक : 1, नवम्बर 2014

उत्तर भारतीय संगीत के प्रचार-प्रसार में तत वाद्यों का योगदान

उमा कुमारी वैष्णव
शोधार्थी, संगीत विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली, राजस्थान

सार-संक्षेप

संगीत संसार की भाषाओं में सबसे श्रेष्ठ भाषा है। जिसे प्रत्येक मानव बिना किसी भाषा विशेष के समझ सकता है। भारतीय सांगीतिक परम्परा के मनीषियों के अनुसार संगीत में तीन कलाएँ गायन, वादन तथा नृत्य का समावेश माना गया है। संगीत के मूल तत्वों की दृष्टि में वाद्य कला पूर्ण संगीत की एक प्रति-निधि कला है, इस पर स्वर तथा लय का एकाधिकार है। वाद्य का उपयोग गायन, वादन और नृत्य के साथ तो प्राचीन काल से ही रहा है लेकिन आज वाद्य का स्वतंत्र वादन, प्रचार-प्रसार काफी विकसित हो चुका है। प्रस्तुत शोध पत्र में तत वाद्यों में सभी तंत्री वाद्यों को समाहित किया गया है जैसे— रूद्रवीणा, सितार, सरोद, वॉयलिन, सारंगी आदि। तत वाद्यों की लोकप्रियता में रूपात्मक सौन्दर्य का विशेष महत्त्व है। रूपात्मक सौन्दर्य, नादात्मक माधुर्य और कलात्मक अभिव्यक्ति की व्यापक क्षमता तंत्री वाद्यों के प्रमुख गुण हैं जिनके कारण इनकी लोकप्रियता निर्विवाद है इसलिए इनका प्रचार-प्रसार भी अधिक मात्रा में होता है। संगीत के प्रचार-प्रसार में तत वाद्यों को गौण दृष्टि से देखने वाले हमारे ही समुदाय के लोगों के समक्ष मैं इस शोध पत्र के माध्यम से यह सिद्ध करना चाहती हूँ कि संगीत के प्रचार-प्रसार में तत वाद्यों के योगदान सदैव रहा है तथा उनके योगदान की वर्तमान समय की स्थिति पर एक सम्यक रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास करूँगी।

शोध-पत्र

संगीत संसार की भाषाओं में सबसे श्रेष्ठ भाषा है। जिसे प्रत्येक मानव बिना किसी भाषा विशेष के समझ सकता है तथा हमारी अति सूक्ष्म संवेदनाओं को उद्दीप्त करके हमारे भावों को परिष्कृत करता हैं। भारतीय संगीत की उत्पत्ति वेदों से मानी गई है। भारतीय शास्त्रीय संगीत गहरे तक आध्यात्मिकता से प्रभावित रहा है, इसलिए इसकी शुरुआत मनुष्य जीवन के अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के साधन के रूप में हुई। संगीत की महत्ता इस बात से भी स्पष्ट है कि भारतीय आचार्यों ने इसे गंधर्व वेद की संज्ञा दी है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र पहला ऐसा ग्रन्थ था जिसमें नाटक, नृत्य और संगीत के मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

भारतीय सांगीतिक परम्परा के मनीषियों के अनुसार संगीत में तीन कलाओं का समावेश माना गया हैं, यथा—''गीतम्, वाद्यं च नृत्यम् त्रयं संगीतमुच्यते।'' संगीत में गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों का समावेश हैं। भारतीय संगीत का वैशिष्ट्य उसके सनातन स्वरूप में हैं, जो अनेक युगों के व्यतीत होने पर अपनी मूल अभिव्यंजना का अक्षुष्ण रखे हुए हैं।

कई तरह के वाद्य अस्तित्व में आए और गान से सम्बद्ध हो गए। संगीत के मूल तत्वों की दृष्टि में वाद्य कला पूर्ण संगीत की एक प्रतिनिधि कला हैं, इस पर स्वर तथा लय का एकाधिकार हैं। वाद्य का उपयोग गायन, वादन और नृत्य के साथ तो प्राचीन काल से ही रहा हैं लेकिन आज वाद्य का स्वतंत्र वादन, प्रचार-प्रसार काफी विकसित हो चुका हैं। भारतीय संगीत में वाद्यों की परम्परा भी उतनी ही प्राचीन है जितनी की गायन। वैदिक वांङमय में ही वाद्यों के प्रकार, वाद्यों की निर्माण विधि तथा वाद्यों के वादन के अवसर के संदर्भ प्राप्त होते हैं। वाद्यों के निर्माण संबंधी विवरण सूत्रकाल में मिलते हैं जिसमें शततंत्री वीणा को बताने की विधि बतलाई गई है। [1]

वाद्य संगीत में संगीत के मूल तत्व स्वर तथा लय के द्वारा बिना किसी अन्य कला की सहायता के श्रोताओं को मधुमती भूमिका तक ले जाकर उसमें घण्टों रमाये रहने की शक्ति है। वाद्य संगीत को सर्वाधिक महत्ता प्रदान करने वाली वस्तु है उनका प्रयोग विस्तार। संगीत की परिपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए वाद्य संगीत किसी अन्य कला की अपेक्षा नहीं रखता जबकि दूसरी कलाएँ इसके सहयोग के बिना अपना पूरा काम कर ही नहीं पाती।

संगीतात्मक ध्वनि तथा गति को प्रकट करने के उपकरण को वाद्य कहा जाता हैं। आदिकाल से मनुष्य किसी न किसी रूप में वाद्यों का प्रयोग करता आया हैं। जैसे-जैसे मनुष्य सभ्य, सुसंस्कृत होता गया, उसके द्वारा वाद्य भी विकसित होते गये। भारतीय शास्त्रों में प्राचीन काल से ही वाद्यों के चार प्रमुख वर्ग माने गये हैं। तत, अवनद्ध, सुषिर तथा धन।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में वाद्यों का वर्गीकरण करते हुए लिखा है कि—

ततं चैवावन्द्धं च धने सुषिरमेव च।
चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम्।।
ततं तन्त्रीकृतं ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम्
धनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्यते।।[2]

तंत्री वाले वाद्य तत कहलाते हैं। खाल से मँढ़े हुए वाद्य अवनद्ध कहलाते हैं। ताल हेतू धातु के बने वाद्य घन कहलाते हैं तथा वंशी आदि वाद्य सुषिर कहलाते हैं।[3] संगीत के तत वाद्य वर्ग की छात्रा होने के कारण मेरा रूझान तत वाद्यों की तरफ रहा हैं चूँकि 'तत' वाद्यों को संवादित करने के लिए उपयुक्त माना गया हैं। तत वाद्यों की शृंखला में अनेक वाद्य हैं जो सुदूर ग्रामीण अंचल में बजाए जाते हैं। सांगीतिक वाद्यों ने 'संगीत की अत्यन्त समृद्ध, क्रियात्मक एवं वादन परम्परा के विकास को

प्रस्तुत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। तत वाद्यों में सभी तंत्री वाद्यों को समाहित किया गया हैं जैसे—रूद्रवीणा, सितार, सरोद, सारंगी, वॉयलिन आदि। तत वाद्यों की लोकप्रियता में रूपात्मक सौन्दर्य का विशेष महत्त्व हैं। रूपात्मक सौन्दर्य, नादात्मक माधुर्य और कलात्मक अभिव्यक्ति की व्यापक क्षमता तंत्री वाद्यों के प्रमुख गुण हैं जिनके कारण इनकी लोकप्रियता निर्विवाद हैं इसलिए इनका प्रचार-प्रसार भी अधिक मात्रा में होता है। ज्ञानदायिनी देवी के साथ वीणा का अक्षुण्ण सम्बन्ध सदा-सदा से रहा हैं और यह सम्बन्ध तंत्री वाद्य (तत वाद्य) को वाद्यों में मूर्धन्य स्थान प्राप्त कराने में भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ हैं। इसी कारण वाद्य वर्गीकरण में तत अर्थात् तन्त्रीयुक्त वाद्यों को आचार्यों द्वारा प्रथम स्थान दिया गया हैं।

वाद्यों की समायोजित धुनें मानव रुचि को परिष्कृत करती हैं। शास्त्रीय सिद्धान्तों की प्रमाणिकता को सिद्ध करने में तत वाद्यों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। श्रीनिवास द्वारा वीणा की तारों पर स्वरों की स्थापना इस सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण है। गायन, वादन, नृत्य में तत वाद्यों का प्रयोग एक महत्त्वपूर्ण योगदान है जिसके माध्यम से तत वाद्यों का प्रचार-प्रसार अधिक से अधिक मात्रा में सम्भव हुआ है।

हिन्दू देवी-देवताओं के चित्रों में प्रत्येक के हाथ में कोई ना कोई सांगीतिक वाद्य के दर्शन होते हैं। इनमें तंत्री वाद्य का स्थान भी है। जैसे—माँ सरस्वती के हाथ में वीणा।

तत वाद्यों का गायन के क्षेत्र में योगदान

गायन के साथ तंत्री वाद्यों का हमेशा से साथ रहा है चाहे प्राचीन समय में वीणा के रूप में विद्यमान रही हो या आज के तानपुरे के रूप में। आज के युग में तंत्री वाद्य के बिना गायक अपने कार्यक्रम की प्रस्तुति की कल्पना भी नहीं कर सकता है। गायक को आधार स्वर प्रदान करने और उसके गायन की उचित संगति तथा स्वरों की एक-दूसरे से दूरी नापने हेतु वाद्यों का आविष्कार हुआ, इनमें तंत्री वाद्यों का योगदान प्रमुख है।''[4] गायन के क्षेत्र में तत वाद्यों के योगदान को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

1. शास्त्रीय संगीत 2. सुगम संगीत 3. लोक संगीत।

1. शास्त्रीय संगीत—शास्त्रीय संगीत से तात्पर्य ऐसे संगीत से है जो शास्त्रगत बंधनों में बंधा हो। भारतीय संगीत में श्रुतियों का विशेष महत्त्व है। गायक की यह इच्छा रहती है कि उसका संगतिकार श्रुतियों का प्रस्तुतीकरण उसी प्रकार करें जिस प्रकार उसके गायन में उसके द्वारा प्रस्तुत हो रही हैं। कई गायक संगति के लिए हारमोनियम लेते हैं परन्तु श्रुतियों का अवतरण हारमोनियम में सम्भव नहीं है। इसलिए गायक हारमोनियम की संगत की अपेक्षा तंत्री वाद्य सारंगी या वॉयलिन की ही संगति अधिक पसन्द करते हैं। इनमें यह स्पष्टता है कि विशिष्ट रागों में लगने वाले विशिष्ट स्वर स्थानों को जिनमें रागों की आत्मा बसती हैं, तंत्री वाद्यों के द्वारा अभिव्यक्ति की जा सकती है। यदि गायन के क्षेत्र में देखे तो मेरे विचार से कंठ संगीत में स्वर वाद्यों का महत्त्व इसलिए भी है कि गायक एक साँस में अपना गायन नहीं समाप्त कर सकता उसको प्रत्येक साँस के अंतराल में रूकना पड़ता है जिसके लिए किसी वाद्य की आवश्यकता पड़ती हैं। आजकल गायक प्रदर्शन के साथ अधिकतर तो सारंगी की संगति पसंद करते हैं क्योंकि इसकी आवाज को गायकी के काफी करीब पाते हैं।

2. सुगम संगीत—सुगम संगीत के अन्तर्गत फिल्मी संगीत, गीत, ग़ज़ल, भजन आदि आते हैं। सुगम संगीत क्षेत्रीय भाषाओं के आधार पर या आंचलिक भाषाओं से बदल भी जाते हैं। इनमें न केवल हिन्दुस्तानी संगीत में प्रयुक्त तत वाद्यों का प्रयोग होता है बल्कि पाश्चात्य तत वाद्यों का भी प्रयोग किया जाता हैं। ये तत वाद्य हैं—सितार, सरोद, संतूर, सारंगी, इसराज, रवाब, गिटार, वायलिन, मंडोलिन, चैलो इत्यादि।

सुगम संगीत ने इन वाद्यों का प्रयोग गीत में छोटे-छोटे टुकड़ों द्वारा रिक्त स्थलों पर भराव का काम किया जाता है। तकनीकी शब्दावली में फिलर या पार्श्ववादन कहा जाता है। उपर्युक्त वाद्यों में स्वतंत्र वादक के रूप में प्रख्यात अनेकों उत्तरभारतीय तत वादकों ने विशेषकर फिल्म संगीत में अत्यधिक योगदान दिया है। उनमें से कुछ कलाकारों के नाम इस प्रकार हैं—पंडित रविशंकर (सितार वादक), उस्ताद विलायत खाँ (सितार वादक), उस्ताद अब्दुल हलीम ज़फ़र खाँ (सितार वादक), उस्ताद रईस खाँ (सितार वादक), पंडित निलाद्री कुमार (सितार वादक), उस्ताद अलीअकबर खाँ (सरोद वादक), श्रीमती ज़रीन दारूवाला (सरोद वादक), पंडित शिवकुमार शर्मा (संतूर वादक), उस्ताद वहीद खाँ (सुरबहार), पंडित राम नारायण (सारंगी)।

गीत व ग़ज़ल, भजन के साथ-साथ या पीछे-पीछे अथवा बीच में छोटे-छोटे टुकड़े लगाकर सौन्दर्यवृद्धि व भराव के लिए भी तंत्री वाद्यों का प्रयोग किया जाता है।

3. लोक संगीत—लोक संगीत जन संस्कृति का अभिन्न अंग है। इसमें शास्त्र का बंधन नहीं होता। जो जनसाधारण द्वारा बनाया गया जनसाधारण के लिए इसका प्रयोग होता है। जिसका प्रयोग जीवन के प्रत्येक सुख-दुःख को व्यक्त करने के लिए किया जाता है, लोक संगीत कहलाता है।

लोक गीतों में शायद ही कोई ऐसा लोक गीत होगा जिसमें तत वाद्यों का प्रयोग ना हो भले ही वे केवल एक तारे की आधार स्वर लेने के लिए ही प्रयोग में ले किन्तु तत वाद्यों में—रावहत्था, सारंगी, एकतारा, कमायचा, सारंगी के अन्य प्रकार भी प्रयोग में लिए जाते हैं। अधिकतर लोगों द्वारा तंत्री वाद्यों का प्रयोग मांगलिक अवसरों पर किया जाता है।

तत वाद्यों का वादन के क्षेत्र में योगदान—

वादन के क्षेत्र में तत वाद्यों के प्रयोग के क्षेत्र को जानने के लिए इन्हें दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

1. एकल वादन 2. जुगल बंदी या संगति वाद्य के रूप में।

1. एकल वादन—एकल वादन में कलाकार अपनी प्रस्तुति के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र होता है। एकल वादन करते समय कलाकार अपनी

वादन शैली अपने घराने की विशिष्ट चीजों का खुलकर प्रदर्शन करता है। आज के समय में एकल वादन के रूप में प्रयोग में लाये जाने वाले मुख्य तत वाद्यों के नाम निम्न हैं—

वॉयलिन, सितार, सरोद, वीणा, सुरबहार, सारंगी, इसराज, संतूर, दिलरूबा, भारतीय स्लार्इड गिटार आदि।

2. संगति या जुगल बंदी के रूप में योगदान— संगतिवाद्यों के रूप में भी तंत्री वाद्यों का योगदान है। विशेषकर शास्त्रीय संगीत में खयाल के अंतर्गत तानपुरे एवं सारंगी का प्रयोग होता आया है। कुछ कलाकारों ने सारंगी के स्थान पर वायलिन का प्रयोग भी किया है। इस सन्दर्भ में पंडित जसराज का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। दक्षिण भारत में तो गायन के साथ संगति वाद्य के रूप में वायलिन का ही प्रयोग किया जाता है।

जुगलबंदी में दो या दो से अधिक कलाकार मुख्य कलाकार के रूप में प्रदर्शन देते हैं। जैसे—सितार के साथ सरोद, वॉयलिन के साथ क्लासिकल गिटार, वीणा के साथ सारंगी, सितार के साथ सारंगी आदि कभी-कभी फ्यूजन के रूप में कई सारे वाद्यों का प्रयोग होता है।

3. नृत्य के क्षेत्र में तत वाद्यों का योगदान—

नृत्य के क्षेत्र में भी तत वाद्य की भी संगति होती है। यदि हम ''दूरदर्शन'' के 'अखिल भारतीय नृत्य कार्यक्रम'' जो बृहस्पतिवार व रविवार को रात्रि के 11.00 बजे से 12.00 बजे रात्रि में आता है इसमें शास्त्रीय नृत्य की प्रस्तुति देखे तो पांएगे अधिकतर दक्षिणी नृत्य में वीणा व वॉयलिन की संगति चलती है व कत्थक नृत्य में अधिकतर सितार, सारंगी का प्रयोग होता है जो अत्यंत कर्णप्रिय लगती है। नृत्य के कई प्रकारों जैसे भरतनाट्यम के साथ संगति हेतु वीणा का प्रयोग देखने को मिलती है। फिल्मी नृत्यों में देखा जाए तो जो गीत नृत्य हेतु रचे गए हैं उनमें सितार, गिटार, वॉयलिन, सारंगी के प्रकारों का प्रयोग देखने का मिलता है। जिनके कारण इनकी लोकप्रियता निर्विवाद है इसलिए इनका प्रचार प्रसार भी अधिक मात्रा में होता है।

भारतीय संगीत के प्रचार-प्रसार में तत वाद्य के कलाकारों ने भी अपनी अति महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। सुरबहार, रूद्रवीणा, सुरसिंगार, सारंगी, सितार, सरोद, वॉयलिन, गिटार आदि प्रकार के तत वाद्य जिनको लोकप्रिय बनाने का श्रेय उस्ताद मुश्ताक अली खाँ, पंडित रविशंकर, उस्ताद विलायत खां, उस्ताद अमजद अली खां, पंडित देबू चौधरी, पंडित विश्वमोहन भट्ट, पंडित इन्द्रनील भट्टाचार्या, पंडित कार्तिक कुमार, पंडित रामनारायण, पंडित शिवकुमार शर्मा, उस्ताद असद अली खाँ, पंडित बुद्धादित्य मुखर्जी, उस्ताद शुजात हुसैन खाँ आदि महान कलाकारों ने इस क्षेत्र में अपनी उपयोगिता सिद्ध की है।

आकाशवाणी, दूरदर्शन द्वारा तत वाद्यों का प्रचार-प्रसार

आकाशवाणी प्रसारण में संगीत का विशिष्ट स्थान रहा क्योंकि संगीत एक श्रव्य विधा है जो ध्वनि में निहित है। इसलिए संगीत और संगीतज्ञों को देश के कोने-कोने तक पहुँचाने में आकाशवाणी ने एक सशक्त माध्यम के रूप में अपनी अहम् भूमिका निभाई। रेकॉर्ड किए हुए संगीत ने जनमानस को संगीत के एकदम करीब ला दिया है। अब श्रोता अतीत और वर्तमान के संगीतज्ञों को आसानी से सुन सकते हैं। आज संगीत प्रसारण आकाशवाणी का मुख्य आकर्षण है, वस्तुत: आज अधिकांश समय संगीत के विभिन्न कार्यक्रमों को ही दिया जाता है। रेडियों के माध्यम से शास्त्रीय संगीत का प्रचार करने हेतु समय-समय पर अनेक योजनाएं भी बनती रहती हैं। चलचित्र, फिल्म अथवा सिनेमा जनसंचार का एक अत्यंत प्रभावशाली माध्यम है। विश्व के जनमानस को सर्वाधिक प्रभावित करने की दृष्टि से चलचित्रों को अन्य संचार माध्यमों की अपेक्षा अधिक महत्त्व मिला है।

शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार में दूरदर्शन का भी योगदान रहा है। शास्त्रीय संगीत को अपेक्षाकृत सरल शैली में जन-जन तक पहुँचाने का कार्य विज्ञापनों द्वारा भी आश्चर्यजनक रूप से किया गया। दूरदर्शन द्वार प्रसारित संगीत का राष्ट्रीय कार्यक्रम ने अत्यधिक योगदान दिया है इसके अतिरिक्त दूरदर्शन पर ऐसे विज्ञापन भी देखने को मिलते हैं, जो भारतीय संस्कृति का अंश लिए होते हैं। इन विज्ञापनों में पार्श्व में शास्त्रीय गायन अथवा वादन सुनाई देता है। उदाहरणार्थ—'ताजमहल चाय' का विज्ञापन। इस विज्ञापन में प्रसिद्ध सितार वादक कार्तिक कुमार के पुत्र नीलाद्री कुमार को सितार बजाते हुए दिखाया गया है। टाईटन घड़ी के विज्ञापन में पण्डित रविशंकर जी का सितार तथा इससे पूर्व ज़ाकिर हुसैन का 'वाह ताज का विज्ञापन' बहुत प्रसिद्ध हुआ था।

अत: भारतीय संगीत के प्रचार-प्रसार में वाद्य अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा तत वाद्यों द्वारा भारतीय संगीत के प्रचार-प्रसार में योगदान सदैव रहा है और रहेगा।

पाद-टिप्पणियाँ

1. भारतीय संगीत का इतिहास, ठाकुर जयदेव सिंह, पृ. 81
2. नाट्यशास्त्र अध्याय-38, श्लोक-1, उद्धृत-नाट्यशास्त्रम्, अनुवादक ब्रजवल्लभ मिश्र, पृ. 467
3. वही, पृ. 467
4. आचार्य बृहस्पति, संगीत चिन्तामणि, पृ. 314

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सिंह, ठाकुर जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, संगीत रिसर्च अकादेमी, कलकत्ता-1994

मिश्र, ब्रजवल्लभ, नाट्यशास्त्रम् हिन्दी अनुवाद सहित, सिद्धार्थ पब्लिकेशन्स, 10 डी.एस.आई.डी.सी. स्कीम-2, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-2, नई दिल्ली-110028

आचार्य बृहस्पति, संगीत चिन्तामणि, बृहस्पति पब्लिकेशंस, डी/4-सी, डी.डी.ए.फ्लैट्स मुनरिका, दिल्ली-110067, संस्करण : 2008